'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ४४ | वाराणसी, मंगलवार, १४ अप्रैल, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

जाबबंचली (मध्य.सौ०) २५-११-'५८

दुनिया में एक मात्र प्राप्तव्य वस्तुः आत्म-समाधान

इस गाँव के कितने ही लोग मिलने आये थे। उनके साथ बहुत-सी बातें हुईं। मैंने पूछा : 'कुल मिलाकर यह गाँव सुखी कहा जायगा या दुःखी ?' उन्होंने जवाब दिया : 'सुखी ही कहा जायगा।' हमारे सारे देश की स्थिति समान नहीं है। कहीं जमीन बहुत कम है, तो कहीं अधिक। कहीं अधिक जमीन होने पर भी वह अच्छी नहीं है। फसल की भी यही बात है। कहीं गेहूँ ही होता है, तो कहीं सिर्फ बाजरा, ज्वार या चावल ही। मारवाड़ में तो रेगिस्तान ही अधिक है। वहाँ के लोगों को दूसरे प्रदेशों में जाकर काम करना पड़ता है, जब कि कुछ प्रदेश ऐसे हैं, जहाँ बाहर से लोग काम करने आते हैं। कहीं आप देखेंगे कि पानी अधिक है, वृक्ष भी काफी हैं, तो कहीं सूखे जंगल ही जंगल दिखाई पड़ेंगे। केरल में जाकर देखें, तो सूखा कहीं दिखाई ही न पड़ेगा, सर्वत्र हरियाली ही दृष्टिगोचर होगी। इतनी सारी विविधता हमारे एक ही देश में है। अतः यह सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई कि यहाँ के लोग सुखी हैं।

करुणा से सुख, ईर्ष्या से दुःख

किन्तु सोचने की बात है कि सुखी मनुष्य का लक्षण क्या हो सकता है ? क्या अपने से अधिक सुखी मनुष्य से ईर्ष्या-मत्सर करनेवाला सुखी कहा जायगा ? लाख रुपयेवाले को उतने से तृप्ति नहीं होती और उसे यही लगता है कि दूसरा पाँच लाख रुपये रखता है, इसलिए अधिक सुखी है, इसलिए मुझे भी पाँच लाख मिलना चाहिए। फिर यदि उसे पाँच लाख नहीं मिलता, तो असन्तोष होने लगता है। इस तरह सुखी मनुष्य अपने से अधिक सुखी की ओर, ऊपरवाले की ओर देखने लगे, तो उसमें ईर्ष्या-मत्सर पैदा होने लगते हैं, जिससे उसे मन में दुःख होता है। इसीलिए विपरीत विचार करने की आदत डालनी चाहिए। यह शिक्षा लेनी चाहिए कि हम अपने से अधिक दुःखी की ओर देखा करें।

मान लीजिये, किसीको पेटभर ही खाना मिलता है, अधिक नहीं। बेचारा रोटी और छाछ खाकर ही रहता है। लेकिन वही अगर अपने से दुःखी मानव की ओर देखे, तो उसे यही इच्छा होगी कि मेरे पास तो अधिक है नहीं, फिर भी जो है, उसमें से ही थोडा उसे दे दिया जाय। इस तरह अपने से नीचेवाले की ओर देखने की आदत डालने पर करुणा उत्पन्न होगी। यदि ऊपरवालों की ओर देखने की आदत पड़ेगी, तो मनमें द्वेष और मत्सर ही पैदा होगा। नीचे की ओर देखने की आदत से गरीब भी सुखी हो सकता है, उसे कभी असन्तोष न होगा। अतः समाज को ऐसी ही शिक्षा मिलनी चाहिए। जिस तरह पानी जहाँ से भी निकलता है, नीचे की ओर ही बहता और समुद्र में ही जाकर इकट्ठा होता है। इसी तरह मानव का मन भी अपने से अधिक दुखीः, गरीब और कठिन स्थिति में पड़े हुए व्यक्ति को ही देखा करे, तो करुणा उत्पन्न हो सकती है।

करुणा का अर्थ

आज एक भाई ने पूछा कि 'करुणा किसे कहा जाय ?' मैंने कहा : 'दूसरे का दुःख देखकर उसके लिए कुछ करने की प्रेरणा होना—मनमें ऐसी तड़पन पैदा होना कि इसके लिए कुछ करके ही छोड़ेंगे, इसीका नाम है करुणा।' दुःखी आदमी को देख उसके लिए कुछ करके ही गुजरना, बिना किये खाना भी अच्छा न लगना और अन्तःप्रेरणा से उसके लिए कुछ करने के लिए प्रयत्नशील हो जाना ही करुणा है।

करुणायुक्त रचना से ही समाज सुखी हो सकेगा

समाज की जीवन-रचना स्पर्धा पर हो सकती है और करुणा पर भी। किन्तु अन्ततः करुणायुक्त समाज-रचना ही हितावह है। स्पर्धा में तो मानव जितना पुरुषार्थ करेगा, उतना पायेगा। जो अधिक पुरुषार्थ करेगा, वह अधिक सुखी हो सकता है। इसके विपरीत जो अधिक पुरुषार्थ न करेगा, वह अधिक नहीं पायेगा। कहा जाता है कि 'यह बात अच्छी ही है। इससे समाज में उद्योग और पुरुषार्थ-शक्ति बढ़ती है।' लेकिन स्पर्धा के समाज में सबसे बड़ा दोष यह है कि बलवान और शक्तिशाली दूसरे का शोषण करने लग जाते हैं। वे बड़े ही कठोर-हृदय बन जाते हैं। किन्तु सोचने की बात है कि हम घर में कैसा बरताव करते हैं ? अगर परिवार में अधिक पुरुषार्थी एक व्यक्ति अधिक कमा लाता है और दूसरा कम पुरुषार्थी, असमर्थ या आलसी कम कमाता है या कुछ नहीं कमाता, फिर भी यह नहीं कहा जाता कि तुमने कम कमाया, इसलिए तुम्हें खाना

इतना ही मिलेगा या तुमने नहीं कमाया, तो तुम्हें खाने को नहीं मिलेगा। बल्कि वहाँ सभी का समान अधिकार माना जाता है। अधिक कमानेवाला कम कमानेवाले के लिए करुणा से अपना छठा हिस्सा दे देता है, उसके लिए त्याग करता है। वह प्रेम से सोचता है कि यह कमजोर है, इसलिए इसकी कमाई कम है। लेकिन मैं कमजोर नहीं, इसलिए मुझे अपनी कमाई का अंश इसे देना ही चाहिए। इस तरह त्याग और करुणा की जो भावना घर में काम में लायी जाती है, उसे ही समाज में भी लाना चाहिए और करुणा के आधार पर ही समाज की रचना होनी चाहिए। तभी सारा समाज सुखी रह सकता है।

स्पर्धा के रहते स्वराज्य में भी सुख नहीं

अगर यह सारा प्रयास न किया जाय, तो स्वराज्य में भी हम लोग सुखी नहीं रह सकेंगे। श्रीमान और भी अधिक श्रीमान बनेंगे, गरीब और भी गरीब, तो दुःखी और भी दुःखी होंगे। इस तरह श्रीमान एवं गरीबों के बीच का अन्तर दिन-दिन बढ़ता ही जायगा और स्वराज्य में भी हम सुखी नहीं हो पायेंगे। परस्पर द्वेष फैलेगा और हर गाँव में झगड़े-टंटे चलते रहेंगे। ध्यान रखें कि अमुक देश में अधिक धन होने से वह सुखी है, ऐसी बात नहीं। जिस देश में एक-दूसरे को मदद करने की वृत्ति अधिक हो, जहाँ की समाज-रचना करुणा पर आधारित हो, वही देश सुखी, निर्मल और शान्तिमय जीवन जी सकता है। इसके विपरीत किसी देश में पैसा चाहे कितना ही हो और फसल भी खासी होती हो; फिर भी अगर वहाँ की समाज-रचना स्पर्धा पर खड़ी हो, तो वहाँ के लोग कभी सुखी नहीं हो सकते।

स्वराज्य के बाद 'सर्वोदय' ही

यही कारण है कि महात्मा गांधी ने हमें 'सर्वोदय' शब्द दिया और कहा कि 'जब तक स्वराज्य मिला नहीं था, तब तक तो 'स्वराज्य' का मंत्र काफी था। अब स्वराज्य के बाद 'सर्वोदय' की स्थापना के लिए प्रयत्न कीजिये।' सर्वोदय का अर्थ है, सभी सुखी हों, एक-दूसरे की मदद करें, मेहनत करें और सभी को समान रूपसे भोग मिले—सभी सहभोग और सहयोग करें। सहभोग का अर्थ है, एकत्र भजन और एकत्र भोजन। जो मिले, उसे सभी बाँटकर, मिलकर खायें। इन्हीं सबका नाम सर्वोदय है। सभी मिलकर साधना करें और मिलकर एक साथ आगे बढ़ें, इसीका नाम सर्वोदय है। इस तरह यह शब्द हमें बापू ने ही दिया।

अगर स्वराज्य के बाद यह शब्द न होता, तो हमारा जीवन बड़ा ही भयानक हो जाता। बहुत-से देश ऐसे हैं, जहाँ स्वराज्य मिलने के बाद यह वासना फैल गयी कि अब हम अधिक मजबूत बनें और दूसरे देशों को लूट लें। ६०-७० साल पहले इटली जब स्वतंत्र हुआ, तो उसका भी यही हाल हुआ। उसे लोभ बढ़ गया कि दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण कर साम्राज्यवादी बन जायँ। इस तरह 'स्वराज्य' के बाद इटली ने 'साम्राज्य' शब्द अपनाया। तब प्रश्न होता है कि क्या हमारा देश भी ऐसा ही करे? किन्तु अगर स्वराज्य मिलने के बाद दूसरे देश पर कब्जा करने की दृष्टि रखी जायगी, तो जो दशा इटली की हुई, वही हमारी भी हो जायगी और हम 'स्वराज्यवादी' से 'साम्राज्यवादी' बन जायेंगे।

भारत पर सर्वोदय का प्रभाव

गुजरात में लुणज नाम का एक गाँव है। वहाँ तेल की एक खान मिली है। आशा है कि उससे काफी पेट्रोल का तेल मिलेगा। बड़े-बड़े देशों को लगता है कि दुनिया में जहाँ भी तेल की खानें हों, वे देश हमारे कब्जे में हो जायँ। ईरान और मध्य एशिया में तेल की खानें काफी हैं, इसलिए सभी बड़े राष्ट्रों की उस पर नजर है। वे सोचते हैं कि हमारे व्यापारियों को वहाँ काम करने को मिले, तो अच्छा है। लेकिन भारत ऐसा नहीं सोचता। कदाचित् आगे ऐसा सोचने लग जाय। पर आज तो ऐसा नहीं सोचता। इसका कारण यही है कि इतनी दीर्घदृष्टि रखकर बापू ने स्वराज्य के बाद हमें यह 'सर्वोदय' का शब्द दिया।

अगर समाज को ऐसा मंत्र न मिलता, तो वह आगे नहीं बढ़ सकता। संस्कृत में एक श्लोक है: 'इच्छति शती सहस्रम्,' जिसमें कहा गया है कि दस रुपयेवाला सौ चाहता है, सौवाला हजार—इस तरह आँकड़ों का कहीं अन्त नहीं। हाथ में सत्ता आने पर किसान भी सोचने लगता है कि 'अभी खेत एक हाथ और बढ़ जाय, तो अच्छा हो। बाड़ थोड़ी आगे बढ़ाकर इस साल एक हाथ तो जमीन मिल गयी और वह सामनेवाले के ध्यान में भी नहीं आया।' इस तरह अगर किसान एक-दूसरे का खेत हड़पने की नियत रखें, पड़ोसी को मदद देने के बदले स्वार्थी और संकुचित वृत्ति रखें, तो राष्ट्र भी ऐसा ही करने लग जायगा। वह भी अपनी दृष्टि दूसरे देशों पर रखेगा। पहले व्यापार करने जायगा और फिर सेना लेकर हमला बोल देगा। इस तरह देशों की भी मति भ्रष्ट हो सकती है और देखते-देखते वे साम्राज्यवादी बन सकते हैं। गांधीजी ने यह सब पहले से ही सोच लिया था, इसीलिए उन्होंने स्वराज्य के बाद हमें 'सर्वोदय' का मन्त्र दिया।

दुखियों के रहते अपना सुख सह्य न हो

जब तक अपने से भी अधिक दुःखी लोग मौजूद हों, तब तक चैन नहीं पड़ना चाहिए। सुखी लोगों के मन में यह आतुरता होनी चाहिए कि यह कैसा सुख है, जो हम तो खाते हैं, पर हमारा पड़ोसी दुःखी भूखा पड़ा है। जो लोग करुणावान होते हैं, वे किसीका भी दुःख देख दुःखी हो उठते हैं और तत्काल उसकी मदद के लिए दौड़ पड़ते हैं। वे अपना सुख सह नहीं सकते, जब तक कि दुनिया में दुःखी लोग बने हुए हों। शास्त्र में ऐसा वचन मिलता है कि 'हमें स्वर्ग नहीं चाहिए और न इन्द्रपद ही। हम श्रीमान होना भी नहीं चाहते, बल्कि केवल दुःखीजनों का दुःख निवारण ही चाहते हैं।' जब ऐसा करुणावान समाज बनेगा, तभी सर्वोदय होगा। इसके विपरीत यदि स्पर्धायुक्त समाज बना, तो एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को, एक प्रान्त दूसरे प्रान्त को, एक ग्राम दूसरे ग्राम को, एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी को और एक आदमी दूसरे आदमी को पीछे ढकेलकर आगे बढ़ने की सोचेगा और दूसरे को दुःखी बनाकर भी सुखी बनने की वृत्ति होगी। यह वृत्ति व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक की हो सकती है। राष्ट्र भी एक व्यक्ति जितना ही संकुचित बन सकता है। यदि सभी राष्ट्र ऐसे ही बन जायँ, तो निश्चय ही आपस में लड़ाई चलती रहेगी और दुनिया कभी सुखी न हो सकेगी। सुखी होने की इच्छा रखते हुए भी वह दुःखी ही होगी। इसीलिए बापू ने यह 'सर्वोदय' शब्द दिया है।

सुखी लोग दुखियों की ओर दौड़ पड़ें

मैंने अभी सुना कि इस गाँव के लोग सुखी हैं। यह बहुत अच्छी बात है। लेकिन अब उन्हें घर में बैठ रहने की इच्छा नहीं होनी चाहिए। सुखी मनुष्य का कर्तव्य है कि दुःखी मनुष्य को खोज

निकालने के लिए वह घर छोड़कर निकल पड़े। जिस तरह बरसात का पानी गड्ढा भरने के लिए दौड़ पड़ता है, उसी तरह उन्हें भी दुखियों के दुःख मिटाने के लिए दौड़ पड़ना चाहिए। उन्हें पानी के ढेर की तरह बनना चाहिए, अनाज के ढेर की तरह नहीं। कुएँ से कितनी ही बाल्टियाँ भर निकालिये, पानी के बीच कभी गड्ढा नहीं हो सकता। तत्काल सभी जलबिन्दु एक-दूसरे से स्नेह के साथ मिलकर गड्ढा भर देते हैं। यदि कम ही होना हो, तो सभी का मिलकर स्तर नीचे उतरता है, किसी एक का नहीं। इसके विपरीत अनाज के ढेर में से २-४ पसेरी निकाल लिया जाय, तो गड्ढा हो जाता है। अनाज के दानों में पानी की बूँदों का-सा स्नेह नहीं पाया जाता। समाज की रचना भी ठीक पानी की तरह ही होनी चाहिए। इसीका नाम सर्वोदय है।

गलत तत्त्वज्ञान से बचें!

मान लीजिये खाने का समय हो गया। पत्तलें परोसी जा चुकीं और आप जाकर उस पर बैठ गये। आपका साथी भी भोजन करने आ रहा है। इसी बीच उसे बिच्छू काट लेता है। और वह विकल हो उठता है। ऐसे समय आप खाना छोड़ उसका दुःख निवारण करने के लिए दौड़ पड़ते हैं। आपको उस समय खाना अच्छा ही नहीं लगता। इस तरह देखा जाय, तो भगवान ने मानव के हृदय में स्वभावतः दुःखी के प्रति करुणा और कोमलता रखी है। लेकिन हमारे यहाँ यह एक नया अजीब तत्त्वज्ञान चल पड़ा है कि मानव अपने पूर्व जन्म के पाप से ही दुःखी हुआ करता है। उसको अपना किया, नसीब भोगने ही देना चाहिए। यहाँ तक कहा जाता है कि उसे उस दुःख से बचाया जाय, तो वह उसकी मुक्ति में ही बाधा डालने जैसा होगा। ऐसे ही गलत तत्त्वज्ञान स्वभावतः कोमल हृदय मानव को कठोर बना दिया करते हैं।

अपने छठे भाई को घर में स्थान दें!

भाइयो! इस जिले में मेरे तीन ही पड़ाव रखे गये हैं। उसके बाद कच्छ जाऊँगा, फिर काठियावाड़ के अन्य जिलों में मेरी यात्रा चलेगी। इसलिए मैं एक दिन में आपको कितना समझा सकूँ? अगर आपके हृदय में करुणा की प्रेरणा जागे और आपको यह वासना हो कि सचमुच सर्वोदय होना चाहिए, तो आपको यह मानना होगा कि आपके परिवारों में जितने लोग हैं, उनमें एक और आदमी है। वह वहाँ दीखता नहीं, लेकिन वह समाज के गरीबों का, दुखियों का प्रतिनिधि है-ऐसा समझें और घर की संपत्ति से एक हिस्सा उसे-समाज को-अर्पण करें। अगर सभी लोग ऐसा करें, तो निश्चय ही समाज सुखी होगा। यह मैं आपसे मुट्ठीभर अनाज की माँग नहीं कर रहा हूँ। वह तो छोटी-से-छोटी चीज है। वह कहने के साथ ही हो जानी चाहिए। लेकिन यह जो कह रहा हूँ, वह सर्वोदय-पात्र रखने के बाद आगे का कदम है। सभीको यह प्रेरणा होनी चाहिए कि हमारे परिवार में एक व्यक्ति और है और उसे अपना हिस्सा आदर के साथ दिया ही जाय। पाँच पाण्डवों का एक भाई कर्ण भी था, पर उसे भुला देने और उपेक्षित करने के परिणामस्वरूप वह कौरवों के पक्ष में मिल गया और महाभारत युद्ध जैसी भीषण घटना घटी। यदि छठे भाई को न भुलाया होता, तो महाभारत का रूप कुछ और ही हो जाता। अतः आपके इस छठे भाई को आपके घर में स्थान मिलना ही चाहिए।

काल करे सो आज कर

यूरोप से एक भाई आये हैं, जिनका नाम है डोनाल्ड। वे पाँच-दस वर्ष से यहीं रह रहे हैं। हिन्दी पढ़े हैं और सर्वोदय के काम में भी जुट गये हैं। उनके साथ एक दूसरे भी भाई इंग्लैण्ड से यह काम देखने के लिए आये हैं। मैं जिस गाँव से होकर आता हूँ, उसी गाँव में ये लोग पहुँचते और पता लगाते हैं कि लोगों पर मेरे भाषण का क्या प्रभाव रहा। गाँववालों ने उनसे यही कहा कि 'बाबा की बात तो सच है, और ऐसा होकर रहेगा, पर उसके लिए समय लगेगा।' इस सम्बन्ध में मैं आपसे इतना ही कहना चाहता हूँ कि यमराज आपको समय दें, इससे पहले आप यह कर लें, तो अच्छा हो। आखिर इसमें कितना समय लगेगा? अगर आप लोग इस विचार को समझ गये हों, तो देर क्यों लगे? यदि आप घर में पाँच व्यक्ति हैं, तो समाज के लिए छठा हिस्सा देने में आपका क्या नुकसान है? अगर पाँच के बदले घर में छठा बच्चा पैदा हो जाय, तो वह भी खाता ही है। इसी तरह यह छठा बच्चा पैदा हुआ है, यही समझकर छठा भाग समाज को देना शुरू कर देना चाहिए। सन्त ने कहा है—'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।' फिर इसके लिए विलंब क्यों?

आपको धर्मराज की एक कहानी सुनाता हूँ। उन्होंने अपने महल में एक घंटा टाँग रखा था। जो कोई भी आता और घंटा बजाता, तो तुरत नीचे उतर कर उसे न्याय दिया जाता था। एक दिन भीम, अर्जुन आदि सभी भाई बातचीत कर रहे थे। इसी बीच किसीने आकर घंटा बजाया। सभी भाई बातों में मशगूल थे, उसमें उन्हें बड़ा ही रस आ रहा था। घंटा सुनकर उन्होंने कहा: 'आये तो क्या, पर आपको न्याय कल दिया जायगा।' इस पर युधिष्ठिर ने कहा: 'भाई! यह ठीक नहीं। क्या भरोसा है कि कल तक हम लोग जीवित ही रहेंगे। हमारी सत्ता तो अभी इसी क्षण पर है। अगर यमराज ने हमें यह लिखकर दिया हो कि हम कल तक जीवित रहेंगे, तो बात अलग है। बाकी शासक के लिए न्याय देना ही धर्म है, बातचीत करना धर्म नहीं।'

भोग कल नहीं, तो धर्म ही कल पर क्यों?

धर्म की बात कल पर छोड़ना ठीक नहीं है। भोग के लिए हम यह नहीं कहते कि 'ठीक है, यह भोग आज नहीं भोगेंगे, कल भोगा जायगा।' फिर धर्म भी कल पर छोड़ना ठीक नहीं। यदि ऐसी वृत्ति बनायी जाय, तो बड़ा ही आनन्द और आत्मसमाधान होगा। आप चाहे जितना धन कमाइये और चाहे जितनी जमीन इकट्ठी कीजिये, लेकिन अगर आत्मसमाधान नहीं कमाया, तो कुछ भी नहीं कमाया। जब यह जीवन छोड़ चले जायँगे, तो जो कुछ यह सारा इकट्ठा किया है, उसमें से कुछ भी साथ नहीं जायगा। लेकिन अगर आत्मसमाधान कमाया हो, तो वह आपके साथ जायगा। इसलिए इस दुनिया में प्राप्त करने की मुख्य वस्तु अगर कोई है, तो वह आत्मसमाधान ही है—अन्तःकरण का समाधान ही है। जो व्यक्ति अपना कर्तव्य इसी क्षण करता है, याने जिस क्षण कर्तव्य का भान हो, उसी क्षण उसे करता है, उसे ही यह आत्मसमाधान हो सकता है। इस दुनिया में आत्मसमाधान के सिवा मानव को पाने के योग्य दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

०००

प्रार्थना-प्रवचन

व्यारा (बंबई) ता० २४-९-'५८

भारत सेना-मुक्त होकर उदाहरण प्रस्तुत करे

आज सवेरे मैंने कहा कि गुजरात में मुझसे दूसरा-तीसरा कोई और यज्ञ न कराइये, केवल वाक्‌यज्ञ करा लेना। किंतु इसमें मुझे साफ यह करना है कि वाक्‌यज्ञ भी अतिशय न कराना। संस्कृत में वचन है कि, "अति सर्वत्र वर्जयेत्"। इसीलिए वाक्‌यज्ञ भी परिमित ही होना चाहिए। कालिदास ने एक सुन्दर बात कही है कि राजा रघु सत्यपालक थे और इसीलिए वे मितभाषी थे। "सत्याय मितभाषिणाम्।" यदि सत्य को शक्तिमंत बनाना है, तो मित भाषण उसका पथ्य है। इसलिए वाक्‌यज्ञ भी संयमपूर्वक ही होना चाहिए। पहले दिन जब गुर्जर विभाग में प्रवेश हुआ, तब मुझे जो कुछ कहना था, सारा कहकर मैं हल्का हो गया।

यह खतरा उठाइये !

मेरे हृदयमें—अंतःकरण में एक समाधान रहा है। उसके आधार पर मेरी गाड़ी चलती है और मैं जीवित रहता हूँ। किन्तु जिसे अपने ऊपर का मन कहा जा सकता है और वस्तुतः परिभाषा के अनुसार जो मन ही कहलाता है, उस बहिरी मन में आजकल मुझे बहुत ही बेचैनी है। इस बीच प्यारेलाल भाई का मेरे नाम पत्र भी आया है, उसमें उनके मन की दशा भी मैंने वैसी ही देखी। देश में जो कुछ भी चल रहा है, उससे मन को किसी भी प्रकार का संतोष नहीं होता। खास करके सेना पर जो तीन सौ करोड़ रुपया खर्च करना पड़ता है, सो बहुत ही दुःखदायक घटना है। मेरे विचार के अनुसार तो यह सारा खर्च एकदम निकम्मा है। संतबालजी से किसीने पूछा कि बाबा कहता है कि इस सेना से मुक्ति मिलनी चाहिए, तो इस पर आपकी क्या राय है। उन्होंने लिखा कि ऐसी किसकी इच्छा नहीं है कि सेना से छुटकारा मिल जाय। सभी ऐसी इच्छा करते हैं और अहिंसा को माननेवाले तो जरूर ऐसा कहते हैं कि सेना के लिए इतना खर्च करने की कत्तई जरूरत नहीं है। फिर भी आज की परिस्थिति में ऐसा लगता है कि इसे टाला नहीं जा सकता—ऐसा अभिप्राय उन्होंने प्रकट किया। दूसरे अनेकों का ऐसा ही अभिप्राय है, यह मैं जानता हूँ। फिर भी एक तत्त्वज्ञान की दृष्टि से नहीं, बल्कि आज के व्यवहार की ही दृष्टि से मेरा यह मत है कि यह सारा खर्च हम लोगों को हिम्मत के साथ बंद कर देना चाहिए। हममें इतनी हिम्मत चाहिए, और हिम्मत ही नहीं, इतनी बुद्धि भी हममें होनी चाहिए। मैं इसे केवल हिम्मत के नाम से पहचानना पसंद नहीं करता। व्यवहार-बुद्धि के नाम से इसे पहचाना जाय, ऐसी मेरी माँग है। जब राजाजी ने अपने भाषण में ऐसा अभिप्राय प्रकट किया कि यह खर्च एकदम काल्पनिक भय के कारण किया जा रहा है। विज्ञान के युग में हिंदुस्तान यदि सेना और उसके खर्च को कम करने में पहल करे, तो सारी दुनिया में इसकी नैतिक शक्ति बढ़ेगी। उन्होंने कहा कि इसमें किसी भी प्रकार का कोई भय है, ऐसी आशंका करना आवश्यक नहीं है। इसमें मैं इतना जोड़ना चाहता हूँ कि खतरा उठाकर भी यह काम करने लायक है।

डर कायरता है

मैंने एक बार विनोद में कहा था कि सभी प्रयोगों में खतरा है। केवल अखतरा में खतरा नहीं है। कहा तो यही जाता है, किंतु बगैर खतरा उठाये कोई अखतरा हो संभव नहीं होता, भले ही उसका नाम अखतरा पड़ जाय। अब दुनिया की ऐसी परिस्थिति नहीं है कि कोई भी एक देश दूसरे विशाल देश पर कब्जा कर ले और उस पर अपनी राजकीय सत्ता चलाने की हिम्मत करे। आणविक शस्त्रों के शोध के बाद वातावरण थोड़ा बदल गया है। पुराने शस्त्र निरर्थक हो गये हैं और पुराना मन जीर्ण बन गया है।

विश्वास-शक्ति इस युग की सर्वश्रेष्ठ शक्ति गिनी जायेगी। शंकाशील रहकर काम करने की वृत्ति, जो पुराने पॉलिटिक्स में थी, सो विज्ञान-युग में 'आउट आफ डेट' हो जाने पर भी चल रही है। इंग्लैंड और अमेरिका में भी यही हो रहा है। क्योंकि अब उन लोगों की बुद्धि भी स्तम्भित हो गयी है। इनके पास इतने भयानक शस्त्रास्त्र हैं, किन्तु उनका विश्वास हिंसा पर से उठ गया है और फिर भी अहिंसा पर उनका विश्वास जमा नहीं है। ऐसी बीच की स्थिति में इंग्लैंड और अमेरिका के राजनेताओं का मन काम कर रहा है। इनका शंकाशील मन पुराने युग में जिस तरह काम करता था, उसी तरह आज भी काम करता है। परंतु गांधीजी ने आकर राजनीति को आध्यात्मिक बनाने की बात की। इसलिए अब भी यदि पाकिस्तान के डर से भारत तीन सौ करोड़ रुपया सेना के पीछे खर्च करता रहेगा और हमारे डर से पाकिस्तान सौ करोड़ रुपया खर्च करता रहेगा, तो बापू की बात का क्या अर्थ रह जायगा? इस तरह हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनों का खर्च मिलकर चार सौ करोड़ रुपया होता है, यह भी हमारा ही है। इतना ही नहीं, यदि व्यापक दृष्टि से देखेंगे, तो पता चलेगा कि दुनिया के अनेक देशों में शस्त्रास्त्रों पर जो खर्च होता है, वह भी अपना ही खर्च है।

परनिर्भर प्लानिंग

आज तो प्लानिंग का नाटक मात्र चल रहा है। हम अपना प्लानिंग अपने आपको देखकर कहाँ बनाते हैं? हमें अपना प्लानिंग पाकिस्तान की तरफ देखकर करना पड़ता है। इसका अर्थ यह हुआ कि इनीशियेटिव्ह (initiative) याने अभिक्रम हमारे हाथ में नहीं है, जहाँ अभिक्रम ही हाथ में न हो, वहाँ पराक्रम कहाँ से होगा? पाकिस्तान द्वारा शस्त्रों पर होनेवाले खर्च को देखकर अपनी योजना बनाना बिल्कुल गलत है। क्या पाकिस्तान भी अपना प्लानिंग इसी तरह नहीं करता है? उसका प्लानिंग हमारी तरफ देखकर बने और हमारा प्लानिंग उसकी तरफ देखकर बने, इसका अर्थ यह हुआ कि प्लानिंग नाममात्र का होता है। वास्तव में प्लानिंग उसीका होता है, जो स्वयं आत्मनिर्भर हो।

आजकल पाकिस्तान में सब कुछ अमेरिकामय हो गया है। परन्तु अमेरिका इतना मूर्ख नहीं है कि वह पाकिस्तान का राज्यशासन अपने हाथ में लेना चाहे। यदि राज्यशासन हाथ में बगैर लिये ही सत्ता चलती हो, तो इससे अच्छा भाग्य और क्या होगा? इसी कारण से दूसरे देश का राज्यशासन अपने हाथ में लेने की आफत कोई मोल नहीं लेना चाहता। अगर अपना प्रभाव दूसरे देश पर पड़ सके, अपना प्रवेश, चंचुप्रवेश, उस पर बना रहे, तो साम्राज्यवादी देशों के लिए इतना ही काफी है।

बैल और मेंढक का मेल !

आज हमारे देश के जितने रुपये भय की मद में खर्च होते हैं, मानलो कि अगर उतने ही रुपये परदेश-भय के बदले परदेश-प्रेम की मद में खर्च करें, तो हम जग जीत सकते हैं। जिसे अंग्रेजी में इमैजिनेशन (imagination) या कल्पनाशक्ति कहते हैं, यह विषय उसी कल्पनाशक्ति का है। महाभारत काल से हिंसा से बचाव करने के लिए हिंसा, करुणार्थी हिंसा, अहिंसार्थी हिंसा—इस प्रकार के हिंसा के भिन्न-भिन्न प्रकार धर्मक्षेत्र में मान्य हुए हैं। यदि हमें भी उन्हें ही मान्य रखना हो, तो फिर हमारा जन्म ही वृथा गया। हमने नाहक ही जन्म लिया। पहले जिन लोगों ने जन्म लिया था, उनकी मान्यता थी कि "यं दंडं धर्म विदुः बुधाः।" दंड देना धर्म है। विज्ञान के युग में यदि हम पुरातन लोगों के उसी शास्त्र को काम में लायें, तो हमारा जन्म बेकार हुआ और यदि उनकी पूरी-पूरी नकल करने लगें, तो वह बैल और मेंढकवाली बात होगी। मेंढक की माँ मेंढक से पूछती है, कि बैल कितना बड़ा था? देख, इतना बड़ा था क्या, ऐसा कहकर शरीर फुला-फुलाकर बताती थी। कितना बड़ा था, यह बताते-बताते उसका पेट फूट गया।

अमेरिका और एशिया के साथ हिंदुस्तान-पाकिस्तान की बराबरी कैसे हो सकती है? अमेरिका सोचता है कि पाकिस्तान के द्वारा अगर हिन्दुस्तान पर हमला कराना हो, तो वे लोग ऐसा हमला करा सकते हैं। किन्तु यह तभी संभव है, जब इनके मन में विश्वयुद्ध का निश्चय हो जाय। और हम लोग भूकम्प की चिंता नहीं करते, उसी तरह विश्वयुद्ध की परवाह भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि भविष्य का विश्वयुद्ध हुआ, तो वह "सहनाववतु सहनौ भुनक्तु" होगा। परमेश्वर सबका भोग इकट्ठा करेगा, सबका संहार एक साथ होगा। तुम श्रोता और मैं वक्ता, दोनों मिलकर प्रार्थना करके समाप्त हो जायेंगे, किन्तु इसका डर मानने की क्या जरूरत है। यह निरर्थक है और अमेरिका यदि इस तरह विचार न करता हो, तो पाकिस्तान के मार्फत हिन्दुस्तान पर हमला करना संभव नहीं है। यों मैं आज यहीं यह सारा स्थूल चिंतन नहीं करना चाहता। त्याग का बहुत बड़ा मूल्य है, ऐसा कहनेवाले राजनीतिज्ञ हिन्दुस्तान में हैं, किन्तु मैं आपके कर्त्तव्य के विषय में एक दूसरी ही बात कहना चाहता हूँ। यदि हमें अपने देश के मानस को शस्त्र-त्याग के लिए तैयार करना है, तो आन्तरिक मामलों में सुरक्षा के लिए पुलिस, फौज आदि का उपयोग न करना पड़े, ऐसी स्थिति लानी ही चाहिए। यह सामर्थ्य आपको प्रकट करना है, ऐसी शक्ति यदि हमने प्रकट नहीं की, तो सर्वोदय चाहे जितना पराक्रम करे, किन्तु उससे कुछ बात नहीं बनेगी। जब तक संरक्षण-देवता हिंसा है, तब तक हिंसा देवी की अध्यक्षता में करुणा आदि छोटी-छोटी देवियाँ जी सकती हैं। इनसे तब तक कोई यह नहीं कहेगा कि तुम मत जीयो। हिंसा करुणा से यही कहती है कि हे करुणा, 'लिव ऐंड लेट लिव'—तू भी जी और मुझे भी जीने दे।

हिंसा-शक्ति को यदि रक्षक-शक्ति की तरह मान्य कर लें, तो हिंसा करुणा को अवकाश देने के लिए तैयार है। लड़ाई का आरम्भ होने के बाद रणक्षेत्र में जो सिपाही घायल हो जाते हैं, उनकी सार-संभार करने के लिए करुणा का आह्वान किया जाता है। वह करुणा घायल सिपाहियों की सेवा-शुश्रूषा कर सकती है और उसका उपकार भी माना जाता है, किन्तु वैसी करुणा में युद्ध समाप्त करने की शक्ति नहीं होती। यह तो रुचिकर करुणा हुई, यह रुचि पैदा करती है।

प्रेम की शक्ति मान्य हो

सभी जानते हैं कि प्रेम में रस है, मधुरता है। हर घर में बचपन से ही बच्चों को प्रेम की तालीम मिले, ऐसी योजना परमेश्वर ने कर रखी है। प्रत्येक बालक को ईश्वर माता के उदर में जन्म देता है और जन्म के पहले दिन से ही दूध के साथ प्रेम की शिक्षा—तालीम—मिलने लगती है। वह प्रेम सबको मान्य है। प्रेम की मधुरता और पवित्रता भी मान्य है, परन्तु प्रेम की शक्ति मान्य नहीं है। जहाँ रक्षण का प्रश्न आया, वहीं दुर्गा, चंडी, काली, चामुण्डा का आवाहन करना पड़ता है। उत्तर में अम्बा माँ, दक्षिण में काली माँ और इन दोनों माताओं के बीच करुणा का साबरमती आश्रम भी चलता है और दोनों तरफ जुगतराम भाई का बेड़छी आश्रम भी चलता है। जब तक रक्षण-शक्ति हिंसा है, तब तक सर्वोदय बिल्कुल फीका है, इसमें कुछ भी दम नहीं है और यही बात मेरे मन में कसकती है।

अभी मैं धूलिया से अक्राणी महाल में गया, तो सुना कि धूलिया में दंगा, हुल्लड़ हुआ। मैं जब धूलिया में था, तब वहाँ 'जय-जगत्' का उद्घोष हुआ था और सख्त वर्षा में भी हजारों आदमी एकाग्र होकर अहिंसा के विचार सुनते थे और वहाँ सर्वोदय-साहित्य की तो खूब ही खपत हुई थी। यह सब हुआ, किंतु एक निरर्थक निमित्त के मिलते ही दंगा हो गया। यह सब देखते रहे, सुनते रहे और लाचार होकर बैठे रहे और कहते रहे कि क्या करें? हम सर्वोदयवालों, अहिंसावालों, गांधीवालों का यही धन्धा है कि दोनों पक्षों की निन्दा करते रहें। एक तरफ से पत्थर फेंका जाय, तो उसकी निंदा करना और दूसरी तरफ से गोलीबार हो, तो उसकी निंदा करना। कुछ लोग पत्थरवालों की निंदा करते हैं, तो कुछ लोग गोलीवालों की निंदा करते हैं, तो इनके हिस्से में एकही निंदा आती है। जब हम दोनों की निन्दा करें, तब सर्वोदयवाले कहलाते हैं। हमारी दुनिया में दोनों की निन्दा होती है और हम गाते हैं, 'निन्दा न करे केनी रे।' इस प्रकार निन्दा करने में क्या पुरुषार्थ है? इसमें किस अहिंसा या सर्वोदय की ताकत प्रकट होती है? निष्क्रिय चिन्तन और निन्दात्मक बातों से ऊपर उठने के लिए ही मैं शान्ति-सेना बनाने पर जोर दिया करता हूँ!

शान्ति-सेना का युग आ गया है

शांति-सेना में मैं कितने आदमी चाहता हूँ। पाँच हजार मनुष्यों पर पूरा जीवन देनेवाला एक, इस तरह सारे हिन्दुस्तान से पचहत्तर हजार शांति-सैनिकों की मेरी माँग है और अपनी ही जगह रहकर थोड़ा घना काम करनेवाले आंशिक समय देनेवाले लाखों मिलने चाहिए। कम से कम एक लाख की शांति-सेना होनी चाहिए।

सन् १९१८ में पहले विश्वयुद्ध के समय गांधी जी रँगरूटों की भरती का काम करते थे। तब लोकमान्य ने कहा कि सेना को अमुक-अमुक अधिकार दिये जायँ। यदि ये अधिकार मिलते हों, तो महाराष्ट्र में से पाँच हजार की सेना तैयार हो सकती है, किन्तु गांधी जी को ऐसी शर्त लगाना उचित नहीं लगा। उन्होंने कहा कि यदि हम सेना में जायेंगे और काम करेंगे, तो सत्ता हाथ में आयेगी ही। इसमें शर्तें लगाने की जरूरत नहीं है। इसलिए लोकमान्य से कहा कि लोग बिना शर्त्त के सेना में भरती हों। इस पर कहा गया था कि अगर बिना शर्त रँगरूट मिल जायँ, तो मेरी तरफ से इतना रुपया इनाम! मैं यह एक पुरानी कहानी कह रहा हूँ। उसके बाद गांधीजी गुजरात में खूब घूमे। वे यहाँ आश्रम में आकर समझाते कि यदि सेना में जायेंगे, तो स्वाभा-

विक रूप से ही सेवा का काम मिल जायेगा। फिर उसके लिए शर्त लगाने की क्या जरूरत है? वे कहते कि स्वराज्य लेना हो, तो उसके लिए हिम्मत करनी चाहिए। यदि इतनी हिम्मत न कर सके, तो वल्लभाचार्य, जैन-धर्म और स्वामी नारायण पंथ बेकार है। उन सबने मिलकर देश को कायर ही बनाया।

यह तो हुई उस समय की स्थिति। उसके बाद अहिंसा के रक्षण के लिए स्वराज्य प्राप्त करने की तैयारी हुई और फिर शांति-सेना की बात चली। उस समय व्यवहार्य और अव्यवहार्य की बहुत चर्चा हुई और तब भी शांति-सेना के लिए गांधी जी को आदमी नहीं मिले। किंतु अब युग बदल गया है। दस वर्षों में बहुत फर्क पड़ गया है। शान्ति-सेना के प्रथम सेनापति तथा प्रथम सैनिक के नाते गांधी जी ने अपने प्राणार्पण कर दिये। अब हममें उनके पथ पर चलने की हिम्मत आनी चाहिए। इस जमाने में शांति-सैनिक बनकर केवल शीशदान नहीं, भक्तिमार्ग पूरा करना है। भक्तिमार्ग का एक अंग नित्य सेवा है। "नित सेवा, नित कीर्त्तन, उक्षब"—इसमें शीशदान नहीं है। यह नित्य का कार्यक्रम है और विशेष प्रसंग आने पर शीशदान। इतना कार्यक्रम मन में निश्चित कर शांतिसैनिक बनना चाहिए और इसकी स्वीकृति के तौर पर घर में सर्वोदय-पात्र रखना चाहिए।

मुझे यह कहते हुए खुशी होती है कि गुजरात में इसका शुभारम्भ हो गया है। जब अहमदाबाद, बड़ौदा में हुल्लड़ हुआ, तो उसमें हमारे भाइयों ने कुछ काम किया। उन पर पत्थर पड़े, मारपीट भी उन्हें सहन करनी पड़ी, पर उसका बहुत असर हुआ। इसलिए यहाँ शांति-सेना का काम प्रारंभ हो गया है। गुजरात पर मेरा बड़ा भरोसा है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि इसपर आप सब गंभीर विचार करें और कम-से-कम इतनी आशा तो की ही जा सकती है कि जो लोग गांधी जी के विचारों का नमक खा चुके हैं, उन्हें तो शांतिसेना में सम्मिलित हो ही जाना चाहिए।

◆◆◆

प्रार्थना-प्रवचन

सणोसरा (गोहिलवाड़) ११-११-'५८

स्वराज्य में आत्मबुद्धि का विकास मुख्य, सुख गौण

इस सणोसरा का नाम तो अब सारे भारत की शिक्षित जनता जानती है, क्योंकि यहाँ एक स्वतंत्र शिक्षा-संस्था चल रही है, जिसकी स्वयंभू प्रेरणा से भारत में बहुतों को स्फूर्ति प्राप्त हो रही है। कितने ही लोग काम देखने के लिए यहाँ आकर रहते और अपने प्रान्त में भी ऐसा ही काम करने की प्रेरणा लेकर जाते हैं। मैं लगभग सारे भारत में घूम चुका हूँ। मैंने देखा कि ऐसे स्फूर्तिस्थान बहुत ही कम हैं। यदि एक-एक प्रदेश में ऐसा एक-एक भी स्फूर्तिस्थान हो जाय, तो वह उन्नति का बहुत बड़ा साधन होगा। परिणामस्वरूप जो काम शासन नहीं कर पाता, वह भी ऐसी संस्था कर सकती है। अर्थात् ऐसी संस्थावाले शिक्षा के बारे में ऐसी दृष्टि रखेंगे, जिससे वह किसी पर लादी न जाय। वे लोगों को समझायेंगे। जब इस तरह समझाया जायगा, तो लोग भी उसे प्रेमपूर्वक स्वीकार करेंगे। जहाँ किसी चीज के बारे में लादने की जबर्दस्ती की जाती है, वहाँ उसका कुछ परिणाम नहीं आता। इसके विपरीत यदि कोई बात समझाकर रखी जाय, और उसे समझपूर्वक स्वीकार कर लिया जाय, तो वह जीवन में उतरकर स्थायी भी बन जाती है।

सत्य क्या है?

आज एक बहन ने मुझसे पूछा कि 'सत्य का अर्थ क्या है?' मैंने कहा : सत्य ऐसी वस्तु है, जो हमेशा टिकती है। जो हमेशा नहीं टिकती, वह सत्य नहीं है। सत्ता या जबर्दस्ती से जो बात लोगों पर लादी जाय, वह कभी टिक नहीं पाती। अतएव उसे 'सत्य' नहीं कहा जा सकता। जो बात समझा-बुझाकर लोगों के सामने रखी जाती है और लोग जिसे समझ लेते हैं, वही टिक पाती है। उसे ही सत्य कहा जायगा।

स्वतंत्र ग्रामराज्य की स्थापना करें

जहाँ ऐसी सुन्दर संस्था हो, वहाँ मुझे अधिक कहने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। चूँकि यह शिक्षा की एक स्वतंत्र संस्था है, इसलिए यह ग्राम भी एक स्वतंत्र ग्रामराज्य बन जाना चाहिए। गाँव का सारा कारोबार सभीके सहकार से चले। कोई भी बात बाहर से लादी न जाय। लोग अपने गाँव की योजना स्वयं ही बनायें। सरकार या अन्य लोगों की जो मदद मिलती हो, भले ही उसे लिया जाय; लेकिन उसके कारण अपनी योजना में किसी तरह का फरक न करें। जब खुद आपको ही अपनी योजना में कुछ भूल दिखाई पड़े, तभी उसमें फरक किया जाय। अपने गाँव की योजना बनाने में यहाँ की संस्था के शिक्षक मदद दे सकते हैं। जब ऐसी सुविधा उपस्थित है, तो गाँववाले अपनी बहुत ही अच्छी योजना बना सकते हैं। सरकारी कानूनों से कभी-कभी तकलीफ भी हुआ करती है। किन्तु ग्राम-स्वराज्य बनाने पर तो उन तकलीफों से भी बचा जा सकता है। फिर सरकारी मदद भी सहज ही मिल पाती है और आत्म-बुद्धि का विकास भी होता है। आत्म-बुद्धि का विकास ही स्वराज्य में मुख्य वस्तु है। सुखप्राप्ति का नंबर उसके बाद का है। सुख गौण वस्तु है। अन्यथा वह सुराज्य ही रहेगा, स्वराज्य नहीं।

ग्राम-स्वराज्य में पारिवारिकता की भावना

ग्राम-स्वराज्य के लिए आप लोग ऐसी योजना करें, तो आपके ध्यान में आ जायेगा कि ग्रामदान में तनिक भी भय नहीं। वह परम निर्भयता की बात है। उसमें गाँव के सभी लोग मिलकर कारोबार चलाते और जमीन की मालकियत मिटा देते हैं। यदि गाँवकी जमीन पर व्यक्तिविशेष की मालकियत हो, तो गाँव आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए सर्वप्रथम गाँव की मालकियत गाँव-सभा की कर दी जाय। फिर गाँव-सभा जिनके पास बहुत अधिक जमीन थी, उन्हें थोड़ी अधिक देकर सन्तुष्ट करे। हर परिवार को शाक-भाजी उगाने के लिए आधा-आधा एकड़ जमीन दे दी जाय। फिर भूमिहीनों को जमीन दे सके, तो अच्छा ही है। किन्तु यदि वह संभव न हो, तो उन्हें उद्योग खोज दिये जायँ। जिस तरह सभीका जीवन सुव्यवस्थित बन सके, ऐसी योजना की जाय और उसी दृष्टि से विचार किया जाय। जिस तरह परिवार में एक लड़का खेती करता हो, तो दूसरे को बुनाई का काम लगा दिया जाता है, उसी तरह गाँव की भी योजना की जाय। जैसे घर में अलग-अलग काम करते हुए भी खाने-पीने और रहने का अधिकार सभीको समान रूप से प्राप्त रहता है, वैसे ही गाँव में भी सभीका समान अधिकार होना चाहिए, तभी ग्राम-स्वराज्य की स्थापना हो सकेगी। सभीकी बुद्धि एकत्र होने पर ही सुख-प्राप्ति के मार्ग मिलेंगे। यदि इस तरह करते हैं, तो वह सर्वोदय की पद्धति से हुआ माना जायगा।

आत्मनिर्भरता में ही स्वराज्य का आनन्द

केवल सरकार के प्रयत्न से सुख-वृद्धि हो ही जायगी, यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। बिना गाँववालों के सहयोग के सुख बढ़ ही नहीं सकता। फिर भी मान लीजिये कि उससे कुछ सुख मिले, तो भी लोगों को स्वराज्य का आनन्द नहीं मिल सकता। किन्तु जब गाँववाले ही अपने गाँव का रक्षण, शिक्षण, पोषण, व्यापार, व्यवहार, जमीन की व्यवस्था और खेती की योजना करें तथा गाँव में कितनी और कौन-सी फसल उगायी जाय, कितना अनाज गाँव में रखा जाय और कितना बाहर भेजा जाय, यह सब स्वयं ही तय करें, तभी वह ग्राम-स्वराज्य कहा जायगा। ऐसे ग्राम-स्वराज्य से सभी गाँव बच जायेंगे और देश भी बच जायगा। इसी तरह धीरे-धीरे सुख बढ़ेगा। किन्तु यदि हम सुख के पीछे ही पड़े रहे, तो ध्यान रखिये कि सुख और दुःख दोनों साथी हैं। जहाँ सुख का स्वीकार करेंगे, तो दुःख भी गले पड़ ही जायगा। फिर भी आश्चर्य की बात है कि लोग सुख के पीछे बावले हो रहे हैं। मैंने काफी खोज कर इसकी युक्ति निकाली है। हम लोग सुख में दूसरों को भागीदार बनायें, सुख वितरण करें, तो सुख बढ़ जायगा और दुःख में भी भाग लें, तो दूसरे का दुःख घट जायगा। इस तरह सुख-दुःख का वितरण ही सुख बढ़ाने और दुःख घटाने की युक्ति है। अगर आप इसे आत्मबुद्धि से करें, तो वह हो सकता है। यदि आप ऐसा करते हैं, तो कुछ ही दिनों में यह एक तीर्थ-स्थान बन जायगा। आज तो यहाँ लोग सिर्फ विद्यालय देखने आते हैं, लेकिन फिर आदर्श गाँव देखने आयेंगे। विद्यालय की योग्यता की यही कसौटी है कि यहाँ के गाँववाले किस तरह ग्राम-स्वराज्य चलाते हैं, यह देखने के लिए लोग आयें। सलाह देनेवालों से सलाह लेकर अपनी बुद्धि से ही गाँव का कारोबार चलाया जाय।

शत-प्रतिशत सर्वोदयपात्र हों।

मुझे यह भी सुनकर प्रसन्नता हुई कि यहाँ बहुत-से घरों में सर्वोदय-पात्र रखे गये हैं। लेकिन सर्वोदय-पात्र तो सभी घरों में होने चाहिए। जहाँ-जहाँ घर में रसोड़ा हो, वहाँ सर्वत्र सर्वोदयपात्र की स्थापना होनी चाहिए। फिर सणोसरा जैसे गाँव में तो शत-प्रतिशत घरों में सर्वोदय-पात्र की स्थापना हो, तभी वह अभिनन्दनयोग्य काम माना जायगा।

◆◆◆

सणोसरा जाते समय मार्ग में

आँबला (गोहिलवाड) ११-११'५८

शिक्षण-स्वातंत्र्य के बिना ग्रामयोजना का साफल्य संभव नहीं

एक समय था, जब इस देश के भाई गाँव में ही खेती करते थे और ग्रामोद्योगों को भी गाँव में ही चलाते थे। वे अपने ही गाँव में कपड़ों के लिए सूत कातते थे। वह सूत बहुत ही सुन्दर कता हुआ होता था। फिर वे उसका बहुत ही महीन कपड़ा बनाते। इतना महीन कि इंग्लैंड में भी वह खप जाता था और अच्छी तरह से खप जाता था। वह कपड़ा वहाँ इतना चला कि आखिर उसे रोकने के लिए वहाँवालों को कर आदि लगाना पड़ा। अभी भावनगर से मुझे हजारों गुंडियाँ सूत अर्पण किया गया। तब भी यहाँ अभी थोड़ी गुंडियाँ बच ही गयी हैं। इससे हमें यह मालूम होता है कि यह हमारे देश का अटूट भंडार है।

कताई की निष्ठा बढ़ायें

इंग्लैंड में हमारे यहाँ का सूत किस तरह खपता था, यह बात अभी मैंने कही, इसीसे हम जान सकते हैं कि प्राचीन काल में हमारे यहाँ के लोग कैसे होते थे। वे अपना दैनिक कार्यक्रम पूर्ण कर बचे हुए समय में सूत कातते थे। और वह भी किनके लिए? दूसरे देशों के लिए। उस समय लोगों को खेती का काम भी पर्याप्त मात्रा में होता था। आज ठीक इसके विपरीत परिस्थिति है। अब तो लोगों को खेती में भी कम काम करना पड़ता है। इसलिए उनको समय अधिक मिलता है। मगर इतना सब होते हुए भी समझ में नहीं आता कि ये मिलें क्यों चलती हैं? इनका काम क्या है?

'चर्खा क्रान्ति का चिह्न है' यह जो बापू ने कहा था, वह भी इन्हीं सब कारणों से ही। जैसे-जैसे इस पर विचार किया जाय, वैसे-वैसे इस वाक्य की सूक्ष्मता और सार्थकता का हमें भान होने लगता है। बापू कहते थे कि अगर हमें ग्राम-स्वराज्य लाना है, तो उसके लिए खेती करने से बचा हुआ सारा-का-सारा समय सूत कातने में ही लगाना होगा, इसलिए आप सभी लोगों को सूत कातने में निष्ठा और भी बढानी होगी। मैं इतनी सी आशा रखता ही हूँ कि कम-से-कम इस पूरे गाँव में हाथ से कती हुई खादी के सिवा दूसरा कपड़ा न दिखाई दे।

इस स्थान का—आँबला का—नाम मैं वर्षों से सुन रहा हूँ। मेरी लड़की विजया बेन यहीं काम करती है। इसलिए खास तौर पर मुझे इस स्थान की याद थी। मेरी यह प्रबल इच्छा भी थी कि अवसर मिलते ही मैं यहाँ अवश्य आऊँ। आज यह सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ है, इसलिए बहुत ही प्रसन्न हूँ।

ग्राम-स्वराज्य का आदर्श खड़ा करें

यह सुनकर मुझे विशेष आनन्द हो रहा है कि यहाँ के लोग शिक्षा का स्वातंत्र्य अपने हाथ में लेकर ही काम कर रहे हैं। उस स्वातंत्र्य में सरकार किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करती, यह जानकर तो बहुत ही खुशी हुई। वह सबको चाहे जैसा करने देती है। यह सर्वथा उचित ही है। सरकार को ऐसा ही करना चाहिए, यह मैं हमेशा कहा करता हूँ। यहाँ जो स्वातंत्र्य कायम है, वह बहुत ही लाभप्रद है। इसीसे यहाँ ग्राम की सफल योजना बड़े ही उत्तम ढंग से बन सकती है। हम गांधीजी की योजनाओं को पूरा करना चाहें, पर हमें शिक्षण-स्वातंत्र्य न हो, तो उन्हें पूरा कर सकना कठिन ही नहीं, नितान्त असंभव भी है। हमें अपने मन में यह निश्चय कर लेना चाहिए कि इस गाँव को हमें ग्रामस्वराज्य का नमूना बनाना है—आदर्श बनाना है। सभी प्रश्नों का हल इसे ही बनाना चाहिए। यह किस प्रकार किया जाय, इसे समझाने की आवश्यकता यहाँ नहीं है। क्योंकि प्रायः सभी भाई उसे जानते हैं। आँबला से मैं यही अपेक्षा रखता हूँ कि यह एक पूर्ण प्रजासत्ताक राज्य बने। इसमें रहनेवाले सभी व्यक्ति आपस में सहकार्य की भावना से एक पारिवारिक व्यक्ति की तरह रहें। उनका आपस में हमेशा प्रेमभाव रहे। आपके इस काम की सुगन्धि चारों ओर फैल जाय। ईश्वर आप लोगों को इसके लिए शक्ति दें और मेरी यह आशा पूर्ण हो।

गांधीजी का निरन्तर सान्निध्य

बस, एक बात और कहनी है। मनुभाई ने कहा था कि गांधीजी यहाँ आने के लिए परम इच्छुक थे, पर न आ सके। मगर मैं कहता हूँ कि वे शरीर से भले ही यहाँ आ न सके हों, किन्तु उनकी आत्मा तो सतत यहाँ ही रहती है। आत्मा से तो वे हमेशा ही यहाँ हैं। मैं निश्चय पूर्वक कहता हूँ कि अगर वे होते, तो मुश्किल से एक-आध बार ही यहाँ आते। किन्तु आज? आज तो वे निरन्तर ही यहाँ हैं। और रह सकते हैं, बशर्ते कि हम उनकी सीख तथा विचारों पर अमल करने की तथा तदनुसार आचरण करने की पूरी चेष्टा करें।

◆◆◆

प्रार्थना-प्रवचन

बीकानेर (सूरत) २६-९-'५९

बिना सहयोगी जीवन के समाज-रचना असंतुलित होगी

ऐसा जन-समुदाय विगत सात-साढ़े सात साल से मैं सतत देख रहा हूँ। मन को हमेशा ही यह दर्शन हुआ करता है। मैं रोज नित्य नये चेहरे और रोज नित्य नये नारायण देखता हूँ, और इससे मुझे बहुत आनंद होता है। मेरी पदयात्रा से मुझे जो शारीरिक थकान आती है, वह भी इससे उतर जाती है।

आज इस ग्राम के भाइयों के साथ मेरी चर्चा हुई थी। किसी एक भाई ने सबके प्रतिनिधि के तौर पर मुझसे बहुत-से प्रश्न पूछे और जैसी कि मेरी पद्धति है, उसी ढंग से मैंने इन प्रश्नों के उत्तर जिस प्रकार एक परिचित मित्र दूसरे परिचित मित्र के साथ बातें करता है, उन्हें दिये। मेरी पद्धति ऐसी है कि मैं जिसके साथ बात करता हूँ, चाहे उससे मेरा पूर्व परिचय न भी हो, तो भी जन्म के प्रारंभ से मेरा उनका परिचय है, इस प्रकार बातें करता हूँ। इस बातचीत में भी मेरी उनके साथ मित्रता हो गयी। मैं यह तो नहीं जानता कि मैंने इनको जो जवाब दिये, उनसे उनका व अन्य भाइयों का समाधान हुआ या नहीं— या कितने अंश तक हुआ। पर मुझे इतना समाधान है कि उनके साथ दिल खोलकर उनके प्रश्नों पर चर्चा की।

हिंसा और स्पर्धा

आज इस विश्व-समाज के सामने एक ही मुख्य प्रश्न है कि समाज-रचना और राष्ट्र के संरक्षण का आधार क्या है? आज तक जो समाज-रचना हुई है, वह स्पर्धा के तत्त्व पर आधारित है। एक की दूसरे से स्पर्धा है, और इस स्पर्धा में जो मनुष्य अधिक उपयोगी, अधिक बुद्धिमान होता है, उसकी जीत होती है। उसकी प्रगति भी होती है। उसे इनाम वगैरा दिये जाते हैं, और उसे दुनिया के अनेक सुख भोगने को मिलते हैं, परन्तु जो आलसी है, सुस्त है, जिसकी बुद्धि में न्यूनता है, उसे सुख कम मिलता है और भोग भी कम ही मिलते हैं। इस प्रकार मेहनत करने का प्रयत्न आरंभ होता है और उससे जो उत्तेजन मिलता है, उसमें स्पर्धारूपी योजना निहित है, इतना ही नहीं यह तो प्रगट ही है कि यह स्पर्धारूपी योजना इस समाज-रचना का एक आधार है। सशस्त्र सेना इस योजना को सुदृढ़ बनाती है।

मेरा विचार है कि स्पर्धा और सैन्य-बल में हमारे पूर्वज इतने बढ़े-चढ़े नहीं थे, जितने कि हम लोग हैं। उनमें अपने जितना विचार-सामर्थ्य भी नहीं था। उनके पास शस्त्रास्त्र नहीं थे। नाम-मात्र के लिए कुछ थे। स्पर्धा का तत्त्व आज के समाज में इतना विकसित हो गया है कि उतनी तेजी से विकास करना संभव नहीं है, क्योंकि इस जमाने में साधन भी आज जैसे नहीं थे और आस-पास का संबंध भी कम था। जमीन अधिक थी और मनुष्य-संख्या आज की अपेक्षा बहुत कम थी। इसलिए परस्पर स्पर्धा टालने की गुंजाइश थी। सैन्य को क्षात्र-धर्म कहें चाहे मिलिटरी कहें। क्षात्र-धर्म में धर्म संयम, प्राणत्याग की तत्परता और दूसरों की रक्षा का उद्देश्य होता है जब कि मिलिटरी की आक्रमणशील वृत्ति होती है, यह दोनों में फर्क है, किंतु स्वरूप दोनों का यही है।

◆◆◆

यह जिम्मेवारी परमेश्वर की है या डाक्टर की?

पिछले ६, ७ सालों में कुल मिलाकर आठ-नौ गोलियाँ मैंने ली होंगी। इससे ज्यादा दूसरी कोई दवा मेरे पेट में नहीं गयी। वस्तुतः दवा की कोई जरूरत ही नहीं। फिर भी कुछ भूल हो जाती है, इसके लिए दवा खाने का अवसर आता है। अतएव हम बुखार के लिए ईश्वर को जिम्मेवार नहीं मानते वह हमारी अपनी खुद की कमाई है। उसकी दुरुस्ती परमेश्वर की खुद की ही है। दुरुस्त तो भगवान ही करता है, भले ही हम दुरुस्त होकर डॉक्टर को श्रेय दें। डॉक्टर और रोगी के बीच एक करार हो गया है। और इसीलिए डॉक्टर सुरक्षित है। डॉक्टर की दवा लेकर रोगी अच्छा हुआ, तो डॉक्टर की महिमा गाता है, डॉक्टर की ख्याति होती है। अगर डॉक्टर की दवा काम न आये, रोगी मर जाय, तो प्रारब्ध या परमेश्वर पर सारी जिम्मेवारी सौंपी जाती है। रोगी मर जाय, तो जिम्मेवार परमेश्वर और बच जाय, तो जिम्मेवार डॉक्टर। इस तरह से डॉक्टर की अपनी महिमा है। दोनों ओर से डॉक्टर को ही श्रेय मिलता है। लेकिन यह विभाजन सर्वथा अन्याय का है। या तो दोनों की जिम्मेवारी परमेश्वर पर सौंपें या डॉक्टर स्वयं उठाये। ◆◆◆

अनुक्रम

१. दुनिया में एकमात्र प्राप्तव्य वस्तुः आत्मसमाधान
जाबवंचली २५ नवम्बर '५८ पृष्ठ ३१३
२. भारत सेनामुक्त होकर आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करे
व्यारा २४ सितम्बर '५८ ,, ३१६
३. स्वराज्य में आत्म-बुद्धि का विकास मुख्य, सुख गौण
सणोसरा ११ नवम्बर '५८ ,, ३१८
४. शिक्षण स्वातंत्र्य के बिना ग्राम योजना
आँबला ११ नवम्बर '५८ ,, ३१९
५. बिना सहयोगी जीवन के समाज रचना
बीकानेर २६ सितम्बर '५८ ,, ३२०

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी।